



प्रकाशन हेतु अनुमोदित

**छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर**

**कोरम : माननीय श्री राजीव गुप्ता, मुख्य न्यायाधीश एवं**

**माननीय श्री सुनील कुमार सिन्हा, न्यायाधीश**

**दांडिक अपील क्रमांक : 344 / 1989**

मध्य प्रदेश राज्य (वर्तमान छत्तीसगढ़)

विरुद्ध

निवेदनलाल

**निर्णय**

निर्णय विचारार्थ प्रस्तुत

सही/-

सुनील कुमार सिन्हा

न्यायाधीश

**माननीय श्री राजीव गुप्ता न्यायाधीश**

मैं सहमत हूँ।

सही/-

मुख्य न्यायाधीश

निर्णय हेतु सूचीबद्ध करें

23.02.2010

सही/-

सुनील कुमार सिन्हा

न्यायाधीश





**छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर**

**कोरम : माननीय श्री राजीव गुप्ता, मुख्य न्यायाधीश एवं**

**माननीय श्री सुनील कुमार सिन्हा, न्यायाधीश**

**दांडिक अपील क्रमांक : 344 / 1989**

**अपीलार्थी**

मध्यप्रदेश राज्य (वर्तमान छत्तीसगढ़)

**विरुद्ध**

**प्रत्यर्थी**

निवेदनलाल, उम्र - 34 वर्ष, पिता श्री राजबाली, कृषक,  
निवासी झितिया, थाना- लालबाघ, राजनांदगांव, तहसील व  
जिला राजनांदगांव(एम.पी.) (वर्तमान छत्तीसगढ़)

**(दांडिक अपील अंतर्गत धारा 378 (1) दण्ड प्रक्रिया संहिता)**

**उपस्थित-**

अपीलार्थी/राज्य के लिए:

श्री सुधीर बाजपेयी, उप शासकीय अधिवक्ता।

प्रत्यर्थी के लिए:

श्री पी.के.सी. तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री शशि  
भूषण अधिवक्ता।

**निर्णय**

**(दिनांक 23.02.2010)**

**न्यायालय का निम्नलिखित निर्णय श्री सुनील कुमार सिन्हा न्यायाधीश द्वारा पारित**

**किया गया है।**

(1) सत्र विचारण क्रमांक 23/88 में सत्र न्यायाधीश, राजनांदगांव द्वारा दिनांक 16 सितम्बर,  
1988 को पारित दोषमुक्ति के निर्णय से व्यथित होकर राज्य ने न्यायालय की अनुमति सहित  
यह अपील प्रस्तुत की है।

(2) तथ्य, संक्षेप में, इस प्रकार हैं:-



मृतका- अलोपाबाई की आयु लगभग 50 वर्ष थी। वह ग्राम झिटिया में निवासरत थी। प्रत्यर्थी- निवेदनलाल भी ग्राम झिटिया का ही निवासी था। उनके मकान एक-दूसरे से सटे हुए थे। अलोपाबाई प्रत्यर्थी की बुआ थी। वह परिवार की एक शाखा से संबंधित थी, जबकि प्रत्यर्थी परिवार की दूसरी शाखा से संबंधित था। दोनों शाखाओं के बीच विभाजन हो चुका था तथा वे पृथक-पृथक निवास कर रहे थे, तथापि प्रत्यर्थी उस भूमि के एक भाग पर दावा कर रहा था जो मृतका के हिस्से में आया था। पक्षकारों के मध्य एक दांडिक मामला भी लंबित था तथा उनके संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे। घटना दिनांक 19.10.1987 को प्रातः लगभग 11:30 बजे खुले स्थान पर हुई, जब प्रत्यर्थी ने मृतका पर कुल्हाड़ी से हमला किया। शव परीक्षण प्रतिवेदन (प्रदर्श-पी/8, डॉ. ए.के. गुप्ता-अ.सा.-11 द्वारा साबित) के अनुसार, मृतका को निम्नलिखित चोटें आईं:

1. दाहिनी अधो जबड़े की मांसपेशी का दाहिनी ओर से छिलना, केंद्र भाग में अधो जबड़े की हड्डी तथा मध्य के दो दाँतों का फ्रैक्चर; दाँत विस्थापित होकर मुख-गुहा में उपस्थित;
2. 6" x 2" का फटा हुआ घाव, मुख-गुहा तक, चोट क्रमांक 1 के फ्रैक्चर स्थल के अनुरूप;
3. 2½" x 1" का फटा हुआ घाव, बाएँ मुख-कोण से अधो जबड़े के केंद्र तक, हड्डी तक गहरा;
4. 3" x 2" का कटा हुआ घाव, गहराई में सर्वाइकल स्पाइन तक, गर्दन के केंद्र में; ट्रेकिआ, इसोफेगस एवं कैरोटिड धमनी कटी हुई; तथा
5. 1½" x ½", 2½" का कटा हुआ घाव, बाएँ कान के नीचे।

शव परीक्षण चिकित्सक का अभिमत था कि उपर्युक्त चोटें मृत्युपूर्व की थी, में कठोर एवं धारदार वस्तु से कारित हुई; गर्दन पर लगी चोट प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त थी; मृत्यु का कारण प्रमुख रक्तवाहिनियों के कट जाने से उत्पन्न रक्तस्राव था; तथा मृत्यु की प्रकृति मानववध थी।



प्रत्यर्थी/अभियुक्त पर भा.दं.सं. की धारा 302 के अंतर्गत आरोप था। अभियोजन का प्रकरण तीन प्रकार के साक्ष्यों पर आधारित था। प्रथम — चक्षुदर्शी साक्ष्य के कथन अशोक कुमार (मृतका का पुत्र — अ.सा.-1), शिवप्रसाद (अ.सा.-2), मंगीलाल (अ.सा.-6) तथा पंचराम (अ.सा.-10) । द्वितीय — न्यायिकेत्तर संस्वीकृति के कथन जो अशोक कुमार (अ.सा.-1), शिवप्रसाद (अ.सा.-2), रामचरण (अ.सा.-3), घनश्याम (अ.सा.-4), गोविन्द (अ.सा.-5), हरिश्चन्द्र (अ.सा.-7) तथा रघुबीरराम (अ.सा.-13) के समक्ष की गई । तृतीय — प्रत्यर्थी के कब्जे से रक्तरंजित टंगिया की जप्ती (जप्ति पंचनामा — प्र.पी/5), जो प्रत्यर्थी ने स्वयं दिनांक 19.10.87 को अपराह्न 3:15 बजे थाना में प्रस्तुत की, तथा उस पर रक्त की उपस्थिति संबंधी एफ.एस.एल. प्रतिवेदन।

विचारण के दौरान मंगीलाल (अ.सा.-6) तथा पंचराम (अ.सा.-10) पक्षद्राही हो गए और उन्होंने अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया। सत्र न्यायाधीश ने अशोक कुमार (अ.सा.-1) तथा शिवप्रसाद (अ.सा.-2) के कथनों पर विश्वास नहीं किया। न्यायिकेत्तर संस्वीकृति का साक्ष्य भी विश्वसनीय नहीं पाया गया।

प्रत्यर्थी ने अपने दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के कथनों में प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विशेषतः बचाव लिया।

अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यों के मूल्यांकन पर, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने यह माना कि प्रत्यर्थी ने अपने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार में कार्य किया और उसने ऐसा अधिकार इस सीमा तक नहीं लांघा कि उसे दंडनीय ठहराया जा सके। अतः प्रत्यर्थी को उसके विरुद्ध आरोपित आरोपों से दोषमुक्त किया गया।

(3) अपीलार्थी/राज्य की ओर से प्रस्तुत विद्वान उप शासकीय अधिवक्ता श्री सुधीर बाजपेई ने यह तर्क किया कि यह भा.दं.सं. की धारा 302 के अंतर्गत प्रमाणित प्रकरण है; शिवप्रसाद (अ.सा.-2)



के कथन को अविश्वसनीय मानने का कोई कारण नहीं था; और सत्र न्यायाधीश ने वर्तमान प्रकरण को प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रकरण मानने में विधिक त्रुटि की।

(4) दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी.के.सी. तिवारी ने इन तर्कों का विरोध किया और सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय तथा निष्कर्षों का समर्थन किया।

(5) हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तृत रूप से सुना है और सत्र प्रकरण के अभिलेखों का भी अवलोकन किया है।

(6) स्वीकृत रूप से चार चक्षुदर्शी साक्षियों में से मंगीलाल (अ.सा.-6) तथा पंचराम (अ.सा.-10) पक्षद्राही हो गए हैं और उन्होंने अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया है। जहां तक अशोक कुमार (अ.सा.-1 — मृतका के पुत्र) का संबंध है, उसे भी सत्र न्यायालय द्वारा उचित ही अविश्वसनीय माना गया है।

अशोक कुमार (अ.सा.-1) ने यह कथन किया कि जैसे ही वह अपने घर से बाहर आया,

उसने देखा कि प्रत्यर्थी-निवेदनलाल उसकी माँ पर टंगिया से प्रहार कर रहा है। उसने स्पष्ट रूप से कहा कि निवेदनलाल ने उसकी माँ के गले पर टंगिया से एक वार किया। प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श-पी/1) अशोक कुमार (अ.सा.-1) द्वारा दर्ज कराई गई थी। प्र.सू.रि. (प्रदर्श-पी/1) में उसने यह उल्लेख किया कि जब वह बवाल स्टेशन पर लगभग दोपहर 12 बजे कार्य कर रहा था, तभी जीतेन्द्र कुमार साहू वहाँ आया और बताया कि निवेदनलाल ने टंगिया से प्रहार कर उसकी माँ की हत्या कर दी है। इस सूचना पर वह अपने गाँव गया और अपनी माँ का शव देखा। जब उसने निवेदनलाल से पूछा, तो निवेदनलाल ने उत्तर दिया कि जैसे उसने उसकी माँ को मार दिया है, वैसे ही किसी दिन वह उसे भी मार देगा। उस समय अनेक ग्रामीण (जिनके नाम प्र.सू.रि. में दिए गए हैं) वहाँ उपस्थित थे। प्र.सू.रि. पुलिस को इस साक्षी द्वारा दी गई सर्वप्रथम सूचना थी। प्र.सू.रि. के अनुसार, उक्त सूचना इस साक्षी को जीतेन्द्र कुमार साहू से प्राप्त हुई थी। अर्थात्, प्र.सू.रि. के



अनुसार वह चक्षुदर्शी साक्षी नहीं था। हमने पाया है कि उसे प्र.सू.रि. के इस संस्करण अवगत कराया गया, जिसे ए से ए तक अंकित किया गया, परंतु उसने इस प्रकार रिपोर्ट दर्ज कराने से इंकार कर दिया। अतः यह स्पष्ट है कि अशोक कुमार (अ.सा.-1), जो कि प्र.सू.रि. में अपने ही संस्करण के अनुसार चक्षुदर्शी नहीं था, ने अपने कथन में सुधार करते हुए बड़ा चढाकर स्वयं को चक्षुदर्शी बना लिया, और सत्र न्यायाधीश द्वारा उचित ही अविश्वसनीय माना गया।

(7) शिवप्रसाद (अ.सा.-2) उसी गाँव का निवासी है। उसने कथन किया कि घटना वाले दिन को लगभग 11:30 पूर्वाह्न जब वह अपने घर लौट रहा था, उसने अपने चाचा बिहारीलाल की चीखें सुनीं और देखा कि प्रत्यर्थी ने मृतका के गले पर टंगिया से वार किया। घटना उस मार्ग पर हुई जो मृतिका तथा प्रत्यर्थी के बयारा (खलिहान मिसाई करने का जगह) के बीच में था। वह तुरन्त घटनास्थल पर पहुँचा। प्रत्यर्थी के हाथ में टंगिया था, जिस पर खून लगा था। उसने कहा कि वह उस हथियार की पहचान कर सकता है और उसने आर्टिकल 'A' के रूप में टंगिया को पहचाना। उसने अपने साक्ष्य के पैरा-4 में विशेष रूप से कहा कि जब उसने देखा, अलोपा बाई भूमि पर पड़ी हुई थी और उसी स्थिति में प्रत्यर्थी ने उस पर टंगिया से प्रहार किया। उसने यह भी बताया कि उसने प्रत्यर्थी से बात की, जिसने कहा कि अलोपा बाई उससे झगड़ा करती थी, इसलिए उसे, उसे मारना था और आज उसने उसे मार दिया। उसने यह भी कहा कि उस समय प्रत्यर्थी बनियान और तौलिया पहने हुए था। बचाव पक्ष की ओर से इस साक्षी का लंबा प्रतिपरीक्षण किया गया, परंतु बचाव पक्ष इस प्रकार की कोई परिस्थिति नहीं निकाल सका जिससे उसके साक्ष्य को अस्वीकार किया जा सके या यह कहा जा सके कि उसने अपीलार्थी को झूठा फँसाया है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने केवल इस आधार पर इस साक्षी के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया कि धारा 161 के अंतर्गत उसका कथन एक दिन बाद दर्ज हुआ, जबकि वह आरंभ से ही पुलिस के लिए उपलब्ध था। सत्र न्यायाधीश द्वारा अविश्वास का यह कारण सही प्रतीत नहीं होता है। यह ऐसा प्रकरण नहीं था जिसमें अंधी हत्या की जाँच हो रही थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही यह उल्लेखित था कि प्रत्यर्थी ने मृतका पर हमला



किया। यहाँ तक कि पंचनामा (प्र.पी-3) में भी अन्वेषण अधिकारी द्वारा यह उल्लेख किया गया कि मृतका की हत्या प्रत्यर्थी ने टंगिया से प्रहार करके की। शिवप्रसाद (अ.सा.-2) पंचनामा कार्यवाही का साक्षी था और सभी पंचों सहित अ.सा.-2 ने अन्वेषण अधिकारी को बताया कि हत्या प्रत्यर्थी ने की है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 19-10-1987 को लगभग दोपहर 2:30 बजे थाने में दर्ज हुई। थाना घटनास्थल से 15 किमी दूर है; अतः जांच कार्यवाही दिनांक 19-10-1987 की शाम को हुई होगी। ऐसी परिस्थिति में यदि चक्षुदर्शी साक्षियों के कथन अगले दिन दर्ज हुए, तो केवल इसी आधार पर चक्षुदर्शी साक्षी के साक्ष्य को अविश्वसनीय मानना उचित नहीं है। इसलिए हमारे विचार में, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अ.सा.-2 शिवप्रसाद के साक्ष्य को त्यागने में विधिक भूल की है। अ.सा.-2 के साक्ष्य के अनुसार स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि प्रत्यर्थी ने मृतका पर टंगिया से हमला किया और आखिरी वार मृतका के गले पर तब किया गया जब वह गिर चुकी थी और भूमि पर पड़ी हुई थी।

(8) जहाँ तक न्यायिकेत्तर संस्वीकृति का प्रश्न है, यदि न्यायिकेत्तर संस्वीकृति का प्रमाण ऐसे साक्षी/साक्षीगण के मुख से आता है जो निष्पक्ष प्रतीत होते हैं और अभियुक्त के प्रति तनिक भी शत्रुतापूर्ण नहीं हैं, और जिनके संबंध में ऐसा कुछ सामने नहीं आता जो यह संकेत दे कि उनके पास अभियुक्त के प्रति असत्य कथन थोपने का कोई उद्देश्य हो सकता है, तथा साक्षी द्वारा बोले गए शब्द स्पष्ट, निर्विवाद और निःसंदिग्ध रूप से यह बताते हों कि अपराध का कर्ता अभियुक्त ही है, और साक्षी द्वारा ऐसा कुछ छोड़ा न गया हो जो उसके विरुद्ध जा सके, तब—साक्षी के साक्ष्य को विश्वसनीयता की कसौटी पर कड़े परीक्षण से परखने के बाद—यदि वह परीक्षण पर खरा उतरता है, तो न्यायिकेत्तर संस्वीकृति को स्वीकार किया जा सकता है और वह दोषसिद्धि का आधार बन सकती है।



(9) वर्तमान प्रकरण में, प्रत्यर्थी द्वारा शिवप्रसाद (अ.सा.-2), रामचरण (अ.सा.-3), घनश्याम (अ.सा.-4), गोविंद (अ.सा.-5), हरीशचंद्र (अ.सा.-7) और रघुबीरराम (अ.सा.-13) के समक्ष = यायिकेत्तर संस्वीकृति किए जाने का साक्ष्य उपलब्ध है। लगभग सभी साक्षियों ने यह साक्ष्य दिया है कि प्रत्यर्थी ने संस्वीकृति की जब उसके हाथ में टंगिया थी, जिस पर खून लगा हुआ था। यद्यपि रामचरण (अ.सा.-3), घनश्याम (अ.सा.-4) और हरीशचंद्र (अ.सा.-7) के साक्ष्य में संस्वीकृति वाला भाग अस्पष्ट है, परन्तु शिवप्रसाद (अ.सा.-2) और रघुबीरराम (अ.सा.-13) के साक्ष्य में यह अत्यन्त स्पष्ट है। भले ही हम इसे दोषसिद्धि का आधार न मानें, पर यह चक्षुदर्शी साक्षी शिवप्रसाद (अ.सा.-2) के साक्ष्य का पूर्ण समर्थन करता है।

(10) अब हम प्रत्यर्थी द्वारा किए गए प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के तर्क पर विचार करेंगे।

(11) प्रत्यर्थी ने अपने अभियुक्त कथन के प्रश्न क्रमांक 115 के उत्तर में निम्नानुसार जवाब दिया

“अलोपाबाई टंगिया लेकर आई और मुझे माँ बेटी बहन की गालियाँ देने लगी। वह मुझे कही कि मैं 4 साल से मकान लेकर से झगड़ा कर रहा हूँ और मैं रुधान को उसके तरफ हटा दिया हूँ। मैं सही स्थान पर रुधान रूंध रहा था। फिर भी अलोपाबाई गाली देने लगी। इसपर मैं उसे रोका और कहा कि वह गांव के सयानो को बुला ले, पटवारी से नाप करवा ले और गलती होगी तो मैं छोड़ दूंगा। इस पर भी अलोपाबाई नहीं मानी और मुझे रोगहा भड़वा कहते हुये मेरे लिये टंगिया उठा ली और कही कि वह मुझे मार डालेगी। इस पर मैं भी टंगिया उठा कर घुमाया। इस पर अलोपा बाई गिर गई। उसे टंगिया कहां लगा मैं नहीं देखा। फिर मैं वहां से आ गया मेरे साथ जो काम कर रहे थे वे लोग भी डर कर भाग गये।”



उक्त बचाव, जो प्रत्यर्थी द्वारा धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के कथन में लिया गया, के आधार पर सत्र न्यायाधीश ने प्रतिपादित किया कि वर्तमान प्रकरण प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का है तथा प्रत्यर्थी ने उक्त अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया है।

(12) भारतीय दंड संहिता के अध्याय IV में प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार सामान्य अपवादों की श्रेणी में आता है। धारा 96 यह उपबंधित करती है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए किया गया कृत्य अपराध नहीं है। यह बचाव केवल उस व्यक्ति तक सीमित नहीं है जो यह अधिकार प्रयोग कर रहा है, बल्कि अन्य व्यक्ति के हित में भी लागू हो सकता है। धाराएँ 96 और 98 कुछ अपराधों तथा कृत्यों के विरुद्ध प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार प्रदान करती हैं, जबकि धारा 99 उन कृत्यों का उल्लेख करती है जिनके विरुद्ध प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार नहीं है। यह

स्पष्ट करती है कि ऐसे कृत्य के विरुद्ध प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार नहीं है जो मृत्यु या गंभीर

आघात की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न नहीं करता, यदि वह कृत्य किसी लोक सेवक द्वारा अपने पद के कर्तव्य में सद्भावना से किया गया हो या करने का प्रयास किया गया हो, भले वह कृत्य विधि

द्वारा सर्वथा न्यायोचित न हो। आगे यह भी उपबंधित है कि ऐसे कृत्य के विरुद्ध भी प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार नहीं है जो मृत्यु या गंभीर आघात की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न नहीं करता, यदि वह

कृत्य किसी लोक सेवक के निर्देश पर, जो अपने पद के कर्तव्य में सद्भावना से कार्य कर रहा हो,

किया गया हो या करने का प्रयास किया गया हो, चाहे वह निर्देश विधि द्वारा सर्वथा न्यायोचित न

हो; और ऐसे प्रकरणों में भी प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार नहीं है जहाँ सार्वजनिक प्राधिकारियों से

संरक्षण प्राप्त करने हेतु पर्याप्त समय उपलब्ध हो। इस अधिकार के प्रयोग की सीमा के संबंध में,

यह प्रावधान है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार किसी भी स्थिति में इतनी क्षति पहुँचाने तक

विस्तृत नहीं है जो उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक क्षति से अधिक हो। धारा 100 उपबंधित

करती है कि शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार, पिछली धारा में उल्लिखित प्रतिबंधों के

अधीन, उस आक्रमणकारी को स्वेच्छा से मृत्यु या अन्य किसी क्षति पहुँचाने तक विस्तृत है, यदि वह





अपराध जिसके कारण इस अधिकार का प्रयोग आवश्यक हुआ है, निम्नलिखित वर्णनों में से किसी का है, अर्थात्— प्रथम — ऐसा हमला जो युक्तियुक्त रूप से यह आशंका उत्पन्न कर सकता है कि अन्यथा मृत्यु परिणामस्वरूप होगी; द्वितीय — ऐसा हमला जो युक्तियुक्त रूप से यह आशंका उत्पन्न कर सकता है कि अन्यथा गंभीर क्षति परिणामस्वरूप होगा। स्वेच्छा से मृत्यु कारित करने तक विस्तृत प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार उपयोग करने हेतु अभियुक्त को यह दर्शाना होगा कि ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान थीं जो उसके लिए यह युक्तियुक्त आधार उत्पन्न करती थीं कि अन्यथा उसे या तो मृत्यु या गंभीर क्षति पहुँचा दिया जाएगा। इस संबंध में प्रमाणित करने का भार अभियुक्त पर है। धाराएँ 102 और 105 भा.दं.सं. प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के आरंभ और उसकी निरंतरता से संबद्ध हैं, जो शरीर तथा संपत्ति—दोनों—पर लागू हैं। जैसे ही शरीर को क्षति कारित करने के प्रयास अथवा धमकी से खतरे तथा अपराध करने की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न होती है, यह अधिकार प्रारंभ हो जाता है, यद्यपि अपराध अभी घटित न हुआ हो; परन्तु तब तक नहीं जब तक ऐसी युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न न हो। अन्य शब्दों में, यह अधिकार उस खतरे की युक्तियुक्त आशंका के समपरिमाण होता है और उस आशंका के बने रहने तक जारी रहता है। अतः यदि यह बचाव लिया जा रहा है कि अभियुक्त ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विधिसम्मत प्रयोग करते हुए कार्य किया, तो उसे दिखाना होगा कि ऐसी प्रबल परिस्थितियाँ विद्यमान थीं जो युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करती थीं कि यदि यह अधिकार प्रयोग न किया जाए तो या तो मृत्यु अथवा गंभीर क्षति हो जाएगा।

(13) इस प्रकरण में, जैसा कि उपर्युक्त व्यक्त किया गया है, प्रत्यर्थी का कथन था कि मृतका उस स्थान पर आई जहाँ वह कार्य कर रहा था और उसने उसे गालियाँ देना प्रारम्भ कर दिया। तत्पश्चात् मृतका ने उसके विरुद्ध टंगिया उठा लिया और कहा कि वह उसे मार डालेगी। इसी पर उसने भी एक टंगिया उठाई और उसे घुमाया, जिस पर मृतका गिर पड़ी। हम प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए उक्त कथन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। उक्त कथन स्वयं प्रत्यर्थी के ही संस्करण से खण्डित होता



है। उपर्युक्त प्रकार से टंगिया घुमाने की प्रक्रिया में किसी व्यक्ति को 4-5 चोटें कैसे लग सकती हैं, जैसा कि मृतका को प्राप्त हुई। भले ही हम प्रतिरक्षा को विश्वसनीय मान लें, तो भी प्रथम अनैच्छिक प्रहार पर मृतका भूमि पर गिर जाती, और उसे एक से अधिक चोटें लगने की संभावना न्यूनतम थी। इसके अतिरिक्त, मात्र इशारा करना या लगभग 50 वर्ष आयु की मृतका द्वारा टंगिया उठाना—क्या ऐसे में प्रत्यर्थी को उसे मार डालने या उसे गंभीर क्षति पहुँचाने का अधिकार प्राप्त हो जाता? हमें ऐसी परिस्थितियाँ नहीं मिलतीं जो प्रत्यर्थी के लिए यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करें कि यदि वह प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग न करे तो उसे मृत्यु या गंभीर क्षति पहुँचाया जाएगा। आगे हम यह भी ध्यान देते हैं कि प्रत्यर्थी को इस घटना में कोई चोट नहीं लगी। हम यह भी नोट करते हैं कि केवल एक टंगिया की जब्ती हुई है, जो प्रत्यर्थी के कब्जे से जप्त की गई, प्रदर्श-पी/5 के अंतर्गत। यदि मृतका भी टंगिया पकड़े हुए थी, तो वह टंगिया घटनास्थल से अवश्य जब्त की जाती। यहाँ तक कि मृतका द्वारा कथित रूप से पकड़ी गई टंगिया के बारे में न तो चक्षुदर्शी साक्षियों से और न ही विवेचना अधिकारी से कोई प्रश्न पूछे गए। अभिलेख पर उपलब्ध समस्त दस्तावेजों का परीक्षण करने के उपरांत, हमें प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का यह तर्क स्वीकृत किये जाने योग्य प्रतीत नहीं होता है।

**(14) बुध सिंह एवं अन्य विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य, (2006) 9 एससीसी 731** में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 9 में यह प्रतिपादित किया कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील के प्रकरणों में, जहाँ दो दृष्टिकोण संभव हों, उच्च न्यायालय सामान्यतः दोषमुक्ति के निर्णय को निरस्त नहीं करता, यद्यपि अपीलीय न्यायालय का दृष्टिकोण अधिक संभाव्य हो सकता है। तथापि, दोषमुक्ति के निर्णय पर विचार करते समय, उच्च न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यों पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण दोषपूर्ण तथा यथावत रखे जाने योग्य नहीं थे। उसे यह विचार करने का भी अधिकार है कि तथ्यात्मक निष्कर्ष पर पहुँचते समय, क्या विचारण न्यायालय ने ग्राह्य साक्ष्य पर विचार करने में असफल रही तथा



अभिलेख पर विधि-विरुद्ध लाए गए साक्ष्य को विचार में ले लिया गया। इसी प्रकार सबूत का भार का ग़लत निर्धारण भी अपीलीय न्यायालय के परीक्षण का विषय हो सकता है।

(15) द्वी. एन. रथीश विरुद्ध केरला राज्य, एआईआर 2006 एससी 2667 में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि जिस साक्ष्य के आधार पर दोषमुक्ति का आदेश दिया गया है, उसकी समीक्षा करने पर अपीलीय न्यायालय पर कोई निषेध नहीं है। सामान्यतः दोषमुक्ति का आदेश इस आधार पर हस्तक्षेप का विषय नहीं होना चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता का अनुमान दोषमुक्ति से और सुदृढ़ हो जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि आपराधिक प्रकरणों में न्याय के प्रशासन में जो सर्वभामी सिद्धांत व्याप्त है, वह यह है कि यदि प्रकरण में प्रस्तुत साक्ष्य पर दो दृष्टिकोण संभव हों—एक अभियुक्त के दोषी होने की ओर संकेत करता हो और दूसरा उसकी निर्दोषता की ओर—तो वह दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए जो अभियुक्त के अनुकूल हो। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे प्रतिपादित किया कि न्यायालय का परम विचार यह सुनिश्चित करना है कि न्याय की हानि न हो। दोषी के दोषमुक्त होने से जो न्याय की हानि हो होती है वह निर्दोष के दोषसिद्धि से होने वाली न्याय की हानि से कम नहीं है। ऐसे मामले में जहाँ ग्राह्य साक्ष्य की उपेक्षा की गई हो, अपीलीय न्यायालय पर यह दायित्व है कि वह उस साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करे, विशेषकर तब जब अभियुक्त दोषमुक्त हो चुका हो, इस उद्देश्य से कि यह पता लगाया जा सके कि क्या अभियुक्तगण में से किसी ने वास्तव में कोई अपराध किया था या नहीं। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने भगवान सिंह व अन्य विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य, (2002) 2 सुप्रीम 567 के निर्णय का उल्लेख किया। आगे यह भी प्रतिपादित किया गया कि दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध अपील पर विचार करते हुए अपीलीय न्यायालय को तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब ऐसा करने के लिए अत्यावश्यक और ठोस कारण विद्यमान हों। यदि आक्षेपित निर्णय प्रत्यक्षतः अयुक्तियुक्त है और सुसंगत व विश्वसनीय सामग्रियों को प्रक्रिया में अनुचित रूप से नजरअंदाज कर दिया गया है, तो यह हस्तक्षेप के लिए एक प्रबल कारण है।



(16) रमेश बाबूलाल दोशी वि. गुजरात राज्य, (1996) 9 एससीसी 225 में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि “दोषमुक्ति के निर्णय की समीक्षा करते समय अपीलीय न्यायालय का पहला कर्तव्य यह देखना है कि क्या विचारण न्यायालय के निष्कर्ष स्पष्टतः गलत, स्पष्टतः दोषपूर्ण या स्पष्टतः अस्थिर हैं। यदि अपीलीय न्यायालय उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर ‘नहीं’ में देता है, तो दोषमुक्ति का आदेश परिवर्तित नहीं किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, यदि अपीलीय न्यायालय, कारणों को दर्ज करते हुए, यह मानता है कि उपर्युक्त किसी भी त्रुटि के आलोक में दोषमुक्ति का आदेश बिल्कुल यथावत नहीं रखा जा सकता, तो उसी स्थिति में—और केवल उसी स्थिति में—वह साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन कर अपना निष्कर्ष निकाल सकता है।”

(17) हमने अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यों की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त सिद्धांतों के आलोक में जांच की है। हमारे विचार में, प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का बचाव स्वीकार्य नहीं था और प्रकरण के तथ्य एवं परिस्थितियों में प्रत्यर्थी के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं था, तथा चक्षुदर्शी साक्षी शिवप्रसाद (अ.सा.2) के साक्ष्य पर, जिसे उपर्युक्त साक्षियों के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा किए गए न्यायिकेत्तर संस्वीकृति के साक्ष्य से पुष्ट किया गया, युक्तियुक्त संदेह से परे यह प्रमाणित हुआ है कि प्रत्यर्थी ने, मृतक के जमीन पर गिर जाने के बाद भी, उस पर टंगिया से अनेक वार किए, जिससे वह धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत दंड के लिए उत्तरदायी बन गया। सत्र न्यायाधीश द्वारा उपर्युक्त साक्ष्यों को अस्वीकार करना तथा प्रत्यर्थी द्वारा लिये गये प्राइवेट प्रतिरक्षा के बचाव को स्वीकार करना विधि में पूर्णतः त्रुटिपूर्ण था।

(18) उपर्युक्त कारणों से, सत्र न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का निर्णय अपास्त किया जाता है। राज्य द्वारा प्रत्यर्थी के दोषमुक्ति के विरुद्ध प्रस्तुत अपील स्वीकार की जाती है। प्रत्यर्थी को धारा 302 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दोषसिद्ध किया जाता है और उसे आजीवन कठोर कारावास के दंड से दंडित किया जाता है। उसे निर्देश दिया जाता है कि वह उसे दिये गये दंड को भुगतने हेतु



शीघ्र आत्मसमर्पण करे। वह पहले से अभिरक्षा में बितायी गई अवधि का समायोजन किये जाने का अधिकारी होगा।

सही/-  
मुख्य न्यायाधीश

सही/-  
सुनील कुमार सिन्हा  
न्यायाधीश

**अस्वीकरण:** हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By - श्रीमती रेशमा कुजूर, अनुवादक

